ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 430-433
www.allresearchjournal.com
Received: 22-11-2018
Accepted: 26-12-2018

डा0 कैवल्य चैतन्य
सूर्या अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं0– 102
आदमपुर, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डा0 कैवल्य चैतन्य
सूर्या अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं0– 102
आदमपुर, भागलपुर, बिहार, भारत

संस्कृत 'यमों' की ध्वन्यात्मक गवेषणा

डा0 कैवल्य चैतन्य

सारांश
जब व्यंजन–संयोग में किसी वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ स्पर्श पूर्व में हो तथा किसी भी वर्ग का पंचम स्पर्श बाद में हो तो उन दोनों स्पर्शों के मध्य एक नासिक्य ध्वनि का अतिरिक्त उच्चारण हो जाता है। यही अतिरिक्त उच्चरित होने वाली ध्वनि 'यम' कही जाती है। तात्पर्य यह है कि किसी व्यंजन–संयोग में यम का प्रादुर्भाव तभी होता है जब उस संयोग का पूर्ववर्ती वर्ण किसी भी वर्ग का अपंचम स्पर्श हो तथा परवर्ती वर्ण किसी भी वर्ग का पंचम स्पर्श हो। याज्ञवल्क्य शिक्षा में कहा गया है कि यदि संघर्षी अथवा अंतस्थ वर्ण के बाद नासिक्य व्यंजन हो तो यम उसे उसी प्रकार छोड़ देते हैं जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाता है। वाजसनेयि प्रातिशाख्य के अनुसार एक ही पद में अपंचम स्पर्श के बाद पंचम स्पर्श रहने पर अपंचम स्पर्श 'विच्छेद' को प्राप्त हो जाता है। उवट ने 'रूक्क्मम्' पद को उदाहृत किया है। वास्तव में जब किसी व्यंजन–संयोग में पूर्ववर्ती वर्ण अपंचम स्पर्श होता है तथा परवर्ती वर्ण पंचम स्पर्श होता है एवं संयोग के पूर्व कोई स्वर ध्वनि होती है तब स्वर के प्रभाव से संयोगादि वर्ण द्वित्व को प्राप्त कर लेता है। यहीं यमागम होता है।

मुख्य शब्द : यम, व्यंजन–संयोग, अपंचम स्पर्श, पंचम स्पर्श, विच्छेद, नासिक्य ध्वनि, संघर्षी, अंतस्थ।

प्रस्तावनाः
संस्कृत ध्वनिविज्ञान में 'यम' का बड़ा ही महत्त्व है। यह संस्कृत ध्वनिशास्त्र की आश्चर्यचकित कर देने वाली वैज्ञानिकता का उदाहरण है। एक विशेष परिस्थिति का द्वित्व 'यम' – त्व को प्राप्त होता है।

आलेख (Main thrust)
सभी प्रातिशाख्यों में एक मत से स्वीकार किया गया है कि, जब व्यंजन–संयोग में किसी भी वर्ग का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ स्पर्श पूर्व में हो तथा किसी भी वर्ग का पंचम स्पर्श बाद में हो तो उन दोनों स्पर्शों के मध्य एक नासिक्य ध्वनि का अतिरिक्त उच्चारण हो जाता है। यही अतिरिक्त उच्चरित होने वाली ध्वनि 'यम' कही जाती है। तात्पर्य यह है कि किसी व्यंजन–संयोग में यम का प्रादुर्भाव तभी होता है, जब उस संयोग का पूर्ववर्ती वर्ण किसी भी वर्ग का अपंचम स्पर्श हो तथा परवर्ती वर्ण किसी भी वर्ग का पंचम स्पर्श हो। यम के स्वरूप के संबंध में सभी प्रातिशाख्यों के विधान कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु मूलतः वे सभी विधान एक ही तथ्य का प्रतिपादन करते हैं। वा0 प्रा0 एवं च0 अ0 के अनुसार यम का प्रादुर्भाव केवल 'अन्तः पद' में ही होता है। जबकि ऋ0 प्रा0 एवं तै0 प्रा0 में इस प्रकार का कोई भी विधान नहीं प्राप्त होता। ऋ0 प्रा0 एवं तै0 प्रा0 के भाष्यकारों ने यम का एक भी उदाहरण इस प्रकार का प्रस्तुत नहीं किया है, जिसमें दो पदों के मध्य में यम का प्रादुर्भाव होता हो। दो पदों के उच्चारण में भी जब संहिता के फलस्वरूप पूर्ववर्ती पद का अन्तिम स्पर्श एवं परवर्ती पद का आदि स्पर्श बिना किंचित् काल–व्यवधान के उच्चरित किये जाते हैं, तभी उनके मध्य यम का प्रादुर्भाव संभव है। अतः यह कहा जा सकता है कि ऐसे स्थलों पर भी दोनों पदों की संहिता होने से दोनों पद मिलकर एक पद के समान कार्य करते हैं। अतः सभी प्रातिशाख्यों का मत समान ही सिद्ध होता है। अब क्रमशः विभिन्न प्रातिशाख्यों एवं उनके भाष्यकारों के यम संबंधी विधानों पर विशद् विचार करते हैं।

ऋ0 प्रा0 में यह विधान किया गया है, कि अननुनासिक स्पर्श अपने यमों को प्राप्त हो जाते हैं, यदि बाद में अनुनासिक स्पर्श हो।[1] परन्तु ऋ0 प्रा0 में यह भी कहा गया है कि ऊष्म–प्रकृतिक (ऊष्म वर्ण से उत्पन्न होने वाले) स्पर्श अपने यमों को प्राप्त नहीं होते हैं।[2] ऋ0 प्रा0 में अननुनासिक स्पर्शों को ही यम होने का विधान किया गया है। इस प्रातिशाख्य में स्पष्टरूपेण यह नहीं कहा गया है, कि इन दोनों (अननुनासिक एवं अनुनासिक) स्पर्शों के मध्य यम का प्रादुर्भाव होता है। ऊष्मवर्ण के यम का

निषेध या0 शि0 में भी प्राप्त होता है, परन्तु वहाँ पर यह स्पष्टतः नहीं कहा गया है कि ऊष्मवर्ण यदि परिस्थितिवर्श स्पर्श वर्ण में परिवर्तित हो जायँ, तब भी वे यमों को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। या0 शि0 में कहा गया है कि यदि संघर्षी अथवा अन्तस्थ वर्ण के बाद नासिक्य व्यंजन हो तो यम उन्हें उसी प्रकार छोड़ देते हैं, जैसे मृतक के संबंधी व्यक्ति मृतक के शरीर को श्मशान में छोड़कर चले जाते हैं अथवा जैसे सिंह को देखकर हाथी भाग जाता है।[3] तै0 प्रा0 में विधान किया गया है कि अनुत्तम स्पर्श के बाद यदि उत्तम स्पर्श हो तो अनुत्तम स्पर्श के पश्चात् उसी के आनुपूर्वी नासिक्य ध्वनि का आगम हो जाता है।[4] आनुपूर्व्य का अर्थ त्रिभाष्यरत्न में 'यथाक्रमात्' बतलाया गया है तथा कहा गया है कि ऐसे अनुत्तम स्पर्श के बाद आनुपूर्व्य रूप से नासिक्य का आगम होता है, जिसके पश्चात् उत्तम स्पर्श हो। वह नासिक्यागम यथाक्रम से होता है। अर्थात् प्रथम स्पर्श के बाद प्रथम नासिक्य, द्वितीय स्पर्श के बाद द्वितीय नासिक्य का आगम होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।[5] उदाहरणार्थ – 'तं प्रत्नथा', 'विद्मा ते' इत्यादि पदों में तकार एवं दकार के पश्चात् क्रमशः नकार एवं मकार नासिक्य वर्ण आये हैं। इनमें तकार एवं दकार अपंचम स्पर्श हैं तथा नकार एवं मकार पंचम स्पर्श हैं। अतः इन दोनों पदों में क्रमशः तकार के स्वरूप की एवं दकार के स्वरूप की नासिक्य ध्वनि का आगम होता है। तै0 प्रा0 में सूत्रकार ने यह भी स्पष्टरूप से बतला दिया है, कि कतिपय आचार्य इन्हीं नासिक्य ध्वनियों को यम कहते हैं।[6] तै0 प्रा0 के भाष्यकार भी यम को आगम ही स्वीकार करते हैं। तै0 प्रा0 में भी अन्तस्थों एवं ऊष्मवर्णों के बाद यम के आगम का विधान नहीं किया गया है, परन्तु तै0 प्रा0 के वैदिकाभरण भाष्य में किसी शिक्षा से कारिकाओं को उद्धृत किया गया है, जिनमें यह स्पष्ट रूप से बतला दिया गया है कि अन्तस्थ वर्णों एवं श्, ष्, स् के साथ वर्गान्त अर्थात् किसी भी वर्ग के पंचम स्पर्श का संयोग होने पर यम उसी भांति दूर हट जाते हैं, जैसे सिंह को देखकर हाथी दूर भाग जाता है। इसी प्रकार ऊष्म प्रकृतिक स्पर्श के पश्चात् भी यदि किसी भी वर्ग का पंचम वर्ण हो तो यम का आगम नहीं होता।[7] वा0 प्रा0 के अनुसार एक ही पद में अपंचम स्पर्श के बाद पंचम स्पर्श रहने पर अपंचम स्पर्श विच्छेद को प्राप्त हो जाता है।[8] वा0 प्रा0 के दोनों भाष्यकारों ने 'विच्छेद' शब्द को यम का पर्याय स्वीकार किया है। वा0 प्रा0 के सूत्रकार एवं भाष्यकारद्वय यम को आगम नहीं स्वीकार करते हैं। क्योंकि सूत्रकार को यदि यम को आगम–स्वरूप आई हुई ध्वनि कहना अभीष्ट होता तो अपंचम शब्द में पंचमीविभक्ति का प्रयोग किया गया होता। क्योंकि जिस पद के पश्चात् आगम का विधान होता है, उसमें पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। दूसरा कारण यह भी है कि भाष्यकार उवट ने भाष्य में 'आपद्यते' शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया है कि यह आगम नहीं है।[9] वा0 प्रा0 के इसी सूत्र के भाष्य में उवट ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात बतलायी है, जिसके अनुसार स्वर से बाद में स्थित संयोगादि स्पर्श का द्वित्व हो जाता है। पुनः इस सूत्र से द्वितीय वर्ण की यम संज्ञा हो जाती है। तात्पर्य यह है कि किसी भी पद में स्वर से परवर्ती संयोगादि वर्ण का उच्चारण दो बार होता है, इन्हीं दो बार उच्चरित होने वाले वर्णों में से द्वितीय वर्ण को यम कहा जाता है। उवट ने 'रूक्क्मम्' पद को उदाहृत किया है। इसमें सर्वप्रथम ककार का द्वित्व हुआ हें, पुनः द्वितीय ककार यम को प्राप्त हो गया है। उवट ने 'त्मन्या' पद को प्रत्युदाहरण के रूप में उद्धृत करते हुए यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रकार के पदों में द्वित्व न होने से तकार एवं मकार का 'संयोग' है, उनके मध्य में यम नहीं हुआ है। वस्तुतः इस प्रकार के संयोग में वा0 प्रा0 के अनुसार द्वित्व होने पर यम का प्रादुर्भाव होता है।[10] इसी द्वित्वीकृत वर्ण में द्वितीय वर्ण का उच्चारण नासिक्य गुण से युक्त हो जाता है तथा यही ध्वनि यम कहलाती है। यदि किसी व्यंजनसंयोग से संयोगादि वर्ण का किसी कारणवश द्वित्व नहीं होता है, तो अपंचम के पश्चात् पंचम स्पर्श आने के बाद भी दोनों स्पर्श वर्ण संयोग का निर्माण तो कर लेते हैं परन्तु उनके मध्य में यम का प्रादुर्भाव नहीं हो पाता। च0 अ0 में यम के विषय में विधान करते हुए कहा गया है कि एक ही पद में अनुत्तमस्पर्श के बाद उत्तमस्पर्श आने पर उनके मध्य क्रम से यमों द्वारा व्यवधान हो जाता है।[11] अर्थात् उत्तम स्पर्श तथा अनुत्तम स्पर्श के मध्य यम का प्रादुर्भाव हो जाता है। ऋ0 तं0 में भी स्पष्ट रूप से यही कहा गया है कि अपंचम वर्ण (अनन्त्य) के साथ पंचम वर्ण (अन्त्य) का संयोग होने पर उन दोनों ध्वनियों के मध्य पूर्ववर्ती ध्वनि के गुणों से युक्त यम का प्रादुर्भाव होता है।[12]

यम की प्रक्रिया में होता है कि जब किसी व्यंजन संयोग के पूर्व स्वर ध्वनि हो तथा व्यंजन संयोग का प्रथम वर्ण किसी भी वर्ग का पंचम व्यतिरिक्त वर्ण हो तथा साथ ही द्वितीय वर्ण किसी भी वर्ग का पंचम वर्ण हो, तब सर्वप्रथम संयोगादि वर्ण का द्वित्व होता है। तत्पश्चात् द्वित्वीकृत समूह का दूसरा अवयव परवर्ती नासिक्य ध्वनि के प्रभाव से अनुनासिक गुण से युक्त होकर उच्चरित होता है। इस प्रकार इसी द्वितीय वर्ण की संज्ञा 'यम' हो जाती है। परन्तु ऋ0 प्रा0 एवं वा0 प्रा0 के उवट भाष्य को देखने से यम के वास्तविक स्वरूप के संबंध में कुछ संदेह उत्पन्न होता है। ऋ0 प्रा0 के भाष्य में उवट ने 'अग्निनम्' पद को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है और कहा है कि 'अग्निनम्' इस पद में दो गकारों और नकार का संयोग है। इनमें प्रथम गकार क्रमज है, अतः वह पूर्व स्वर का अंग है और पूर्ववर्ती स्वर के अनुदात्त होने से अनुदात्त के समान सुना जाता है। द्वितीय गकार संयोगादि है, यमीभूत वह गकार पूर्ववर्ती स्वर का भी अंग है और विकल्प पक्ष में परवर्ती स्वर का भी अंग है।[13] उवट के इस विवरण से यह स्पष्ट है कि द्वित्वीकृत गकार समूह में द्वितीय गकार की ही संज्ञा यम है। जबकि वा0 प्रा0 1। 103 के भाष्य में 'रूक्क्मम्' पद को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके उवट ने इस पद में दो ककार यम और मकार को संयुक्त व्यंजन बतलाया है।[14] इस कथन के आधार पर तो यह कहना अधिक समीचीन होगा कि यम के रूप में आई हुई ध्वनि द्वितीय ककार और मकार के मध्य में स्थित होती है। वा0 प्रा0 के भाष्य में भी उवट ने 'दद्घ्ना' पद का उदाहृत करते हुए इसमें दकार, धकार, यम तथा नकार को संयोग स्वीकार किया है।[15] इससे भी उपर्युक्त तथ्य की ही पुष्टि होती है। 'वर्णरत्नप्रदीपिका' शिक्षा में भी स्पष्टतः यही कहा गया है कि स्वर के बाद आने वाला संयोगादि वर्ण जब द्वित्व को प्राप्त करता है, तो उसी का दूसरा वर्ण 'यम' कहलाता है।[16] वास्तव में जब किसी व्यंजन संयोग में पूर्ववर्ती वर्ण अपंचम स्पर्श होता है तथा परवर्ती वर्ण पंचम स्पर्श होता है एवं संयोग के पूर्व कोई स्वर ध्वनि होती है, तब स्वर के प्रभाव से संयोगादि वर्ण द्वित्व को प्राप्त कर लेता है। इस द्वित्वीकृत समूह का द्वितीय अवयव अपनी परवर्ती नासिक्य ध्वनि के प्रभाव के कारण नासिक्य गुण से युक्त होकर उच्चरित हो जाता है। इस प्रकार 'रूक्मम्' का उच्चारण रूक्क्ँमम् के रूप में होता है। 'वर्णरत्नप्रदीपिका' शिक्षा में यम से युक्त संयोग को 'लौह पिण्ड' के समान बतलाया गया है तथा यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार लौहपिण्ड को आसानी से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार इन ध्वनियों को अलग–अलग करके उच्चरित करना अत्यन्त कठिन है। इस संयोग में पूर्ववर्ती ध्वनि का परवर्ती ध्वनि के साथ इतना घनिष्ठ संयोग रहता है कि पूर्ववर्ती ध्वनि में नासिक्यता आ जाने से उसे यम की संज्ञा प्रदान की गई है।[17] वा0 प्रा0 में भी संघर्षी ध्वनि के बाद यम का निषेध किया गया है।[18] शिक्षा ग्रन्थों में संघर्षी ध्वनि से युक्त व्यंजन संयोग को ऊर्णापिण्ड के समान बतलाया गया है।[19] जिस प्रकार ऊन के गोले में दो धागों का परस्पर किसी प्रकार का संबंध नहीं होता, दोनों ही परस्पर पृथक्–पृथक् रहते हैं, उसी प्रकार उपर्युक्त संयोग में दोनों ही ध्वनियाँ परस्पर पृथक्–पृथक् रहती हैं। एक के प्रभाव से दूसरी ध्वनि में किसी प्रकार का विकार नहीं होने पाता।

ध्वनिवैज्ञानिक ग्रंथों में यम के संबंध में प्राप्त होने वाले विधानों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि ऋ0 प्रा0 तथा वा0 प्रा0 के अतिरिक्त अन्य प्रातिशाख्यों में यम को आगम ध्वनि माना गया है। पा0 शि0 4 पर पंजिकाभाष्य में यम संबंधी व्याख्याओं को प्रस्तुत करते हुए यह कहा गया है कि नारद तथा औदव्रजि प्रभृति आचार्यों ने यम को आगम माना है, किन्तु आचार्य शौनक यम को वर्णापत्ति मानते हैं। इसी प्रसंग में पाश्चात्य वैदिक विद्वान् मैक्समूलर और प्रसिद्ध ध्वनिवैज्ञानिक रेग्नियर के यम संबंधी विचारों का उल्लेख कर देना भी श्रेयस्कर होगा। प्रो0 मैक्समूलर ने ऋ0 प्रा0 के यम विधायक सूत्र की व्याख्या में स्पष्टतः कहा है कि जब अननुनासिक स्पर्श के बाद अनुनासिक स्पर्श आता है, तब अनुनासिक स्पर्श के पूर्व में एक नासिक्य ध्वनि का आगम हो जाता है, जिसे यम कहते हैं। यही तथ्य रेग्नियर को भी मान्य है।

परन्तु विचार करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त दोनों पाश्चात्य विद्वान् यम के स्वरूप को ठीक से नहीं समझ सके हैं। इस प्रसंग में सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि पाणिनि–संप्रदाय के वैयाकरणों तथा प्रातिशाख्यकारों का मत है कि पंचमी विभक्ति से विहित कार्य उस पंचम्यन्त पद से बाद स्थित अवयव को होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जिन सूत्रों में पंचमी का प्रयोग है, उनके अनुसार उस स्पर्श के बाद में यम का आगम स्वीकार किया गया है तथा जिन सूत्रों में प्रथमा का प्रयोग है, उनके अनुसार उसी प्रथमान्त को ही यमापत्ति होती है। ऋ0 प्रा0 के यम–विधायक सूत्र में 'स्पर्शाः' शब्द के प्रथमान्त होने के कारण यम को कभी उस प्रथमान्त से पूर्व नहीं माना जा सकता। दूसरा कारण यह है कि जब दो स्पर्शों के संयोग में यम का प्रादुर्भाव होता है, तो जिस प्रकार स्वरभक्ति, अभिनिधान, स्फोटन आदि विशिष्टतायें संयुक्त होने वाले दोनों वर्णों के मध्य में आती हैं, उसी प्रकार यम को भी संयुक्त होने वाले दोनों वर्णों के मध्य आना चाहिए। इस प्रसंग में डॉ0 मंगलदेव शास्त्री का कथन है कि – ''यह बात ध्यान में रखने की है कि तै0 प्रा0 और च0 अ0 दोनों प्रातिशाख्य यम ध्वनि को पूर्ववर्ती अननुनासिक स्पर्श एवं परवर्ती अनुनासिक स्पर्श के मध्य में आगमात्मक ध्वनि मानते हैं। इस सूत्र की शब्दावली यह बतलाती है कि वे यम अननुनासिक स्पर्शों के स्थान पर आने वाले वर्ण हैं। जो कुछ भी हो, यमों को अननुनासिक स्पर्शों के पूर्व में संलग्न कदापि नहीं माना जा सकता है, जैसा कि मैक्समूलर और रेग्नियर का मत है।'' च0 अ0 1। 99 की व्याख्या में ह्विटनी ने यम की अन्वर्थता का विश्लेषण करते हुए कहा है कि प्रत्येक अनुनासिकपूर्व अननुनासिक स्पर्श अपने स्वरूप का एक जोड़ा हो जाता हे। मौलिक स्पर्श का जो भाग बचा रहता है, वह जोड़े में से एक है और इसका नासिक्य भाग जोड़े का दूसरा अवयव है। उन दोनों में बाद वाला यम है, जिसे जोड़ा बनाने के लिए जोड़ दिया जाता है। ऋ0 प्रा0 में यह विधान किया गया है, कि यम अपने मूलभूत व्यंजन के सदृश होता है।[20] तात्पर्य यह है कि जो अननुनासिक स्पर्श यमत्व को प्राप्त हो जाता है उस अननुनासिक स्पर्श के समान ही वह यम भी होता है। भाष्यकार उवट ने इस तथ्य को इस प्रकार समझाया है – 'पलिक्क्नी' में यम को ककाररूप जानना चाहिए, 'अग्गमन्' में यम को गकार रूप जानना चाहिए, 'जघ्घ्नथुः' में यम को घकार रूप में जानना चाहिए, 'परिज्ज्मानम्' में यम को जकार रूप में जानना चाहिए और 'अप्पस्वतीम्' में यम को पकार रूप में जानना चाहिए। ऋ0 प्रा0 में विधान किया गया है कि कार्य के विषय में यम मूलभूत व्यंजन से अभिन्न होता है। तात्पर्य यह है कि यम मूलभूत व्यंजन के ही कार्यों को प्राप्त करता है। यही कारण है कि 'उपद्ध्मातेव स्मसि' में ऋ0 प्रा0 के अनुसार यम अपने मूलभूत व्यंजन धकार के समान दकार के साथ एक बार उच्चरित होता है। ऋ0 प्रा0 में यम के मूलभूत व्यंजन के रूप में दिखलाई पड़ने का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि यम के उच्चारण–काल में ही मुख में एक स्पर्शात्मक ध्वनि का उच्चारण हो जाता है।[21] अर्थात् यम वर्ण के नासिक्य उच्चारण के साथ–ही–साथ मुख में मूलभूत व्यंजन के अनुरूप स्पर्शात्मक ध्वनि का उच्चारण भी होता है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि अननुनासिक स्पर्श ही नासिक्यगुण से युक्त होकर यम का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। परन्तु यह यम ध्वनि मूलभूत अननुनासिक स्पर्श के अतिरिक्त ध्वनि के रूप में आ जाती है, जिसे तै0 प्रा0 तथा च0 अ0 में आगम के रूप में स्वीकार किया गया है। तै0 प्रा0 21। 12 पर अपनी अंग्रेजी व्याख्या में ह्टिनी ने कहा है, कि यम एक संक्रामिका ध्वनि है तथा वह अनुत्तम स्पर्श एवं उत्तम स्पर्श के मध्य आती है। इसके स्वरूप के विषय में ह्विटनी का कथन है कि यह ध्वनि अनुत्तम स्पर्श की नासिक्य स्वरूप (नासिक्य प्रतिलिपि) है। इसीलिए यह ध्वनि यम अथवा जोड़ा कहलाती है। ह्टिनी ने तै0 प्रा0 21। 12 की व्याख्या में एक रूचिकर बात बतलायी है। उसके अनुसार 'प्रत्नथा', 'विद्मा ते' इत्यादि उदाहरणों में सर्वप्रथम संयोगादि स्पर्श का द्वित्व हुआ है। पुनः द्वित्वीकृत स्पर्श एवं अनुनासिक स्पर्श के मध्य अननुनासिक स्पर्श के स्वरूप वाले यम का आगम हुआ है। इस बात का स्पष्टीकरण ह्विटनी के उस कथन से होता है, जिसमें उसने स्पष्टतः कहा है कि इस प्रकार के संयोगों को हम लोग इस रूप में पढ़ और विभाजित कर सकते हैं – प्रत्नथा त्र प्रत्त्+त्ं नथा, विद्मा त्र विदद्+द्ंमा। ह्विटनी के इस कथन का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि संयोगादि वर्ण का द्वित्व उस स्थिति में भी हो जाता है, जब संयोग का द्वितीय अवयव अननुनासिक स्पर्श होता है। इसलिए यम के रूप में आने वाला वर्ण द्वित्व से उत्पन्न वर्ण के अतिरिक्त ही होगा। उवट ऋ0 प्रा0 एवं वा0 प्रा0 के भाष्यों में परस्पर विरोधी विचारों का प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार किसी स्थल पर द्वित्व से उत्पन्न वर्ण के अतिरिक्त आने वाली ध्वनि यम कही जाती है तथा किसी स्थल पर द्वित्वसमूह में ही द्वितीय वर्ण यम को प्राप्त हो जाता है। विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि उवट ने 'रूक्क्मम्' पद में दो ककार यम और मकार का संयोग इसलिए स्वीकार किया है कि यम तो वस्तुतः अनुनासिक स्पर्श के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली उस नासिक्यता को ही कहना चाहिए, जो अननुनासिक स्पर्श के साथ संयुक्त होकर उसे भी अनुनासिक बना देती है। वास्तव में यम नासिक्यता को ही कहना चाहिए क्योंकि स्पर्श का द्वित्व हो जाना तो भाषा की सामान्य प्रवृत्ति है। अनुनासिक वर्ण के प्रभाव से केवल निरनुनासिक वर्ण में ही अनुनासिकता आती है, अतः उसी अनुनासिकता को यम कहना अधिक युक्ति–युक्त है।

स्पर्श वर्णों के संयोग में जब अननुनासिक स्पर्श के पश्चात् अनुनासिक स्पर्श का उच्चारण किया जाता है, तब इस उच्चारण प्रक्रिया में कई क्रियायें होती हैं। सर्वप्रथम अननुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए उच्चारणाङ्गों का स्पर्श होता है, जिससे वायु का उसी स्थान पर अवरोध हो जाता है। इस अवरोध की स्थिति में ध्वनि स्फुट नहीं होती है। पुनः जब परवर्ती अनुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए प्रयत्न किया जाता है तब, पूर्ववर्ती स्पर्श के उच्चारण के लिए किए गए उच्चारणाङ्गों के स्पर्श द्वारा अवरूद्ध वायु को स्फोटन का अवसर प्राप्त हो जाता है। क्योंकि किसी भी स्पर्श वर्ण के लिए किये गये प्रयत्न द्वारा अवरूद्ध वायु का स्फोटन उसी स्थिति में हो पाता है, जब उस स्पर्श ध्वनि के पश्चात् ऐसी ध्वनि उच्चरित की जाय, जिसके उच्चारण में वायु निरन्तर बाहर निकलती रहे, अर्थात् जिसके उच्चारण में वायु का अवरोध न हो रहा हो। ध्वनियों के उच्चारण के प्रसंग में यह बतलाया जा चुका है कि अनुनासिक ध्वनियों के उच्चारण में वायु निरन्तर नासिकाविवर द्वारा बाहर निकलती रहती है। नासिक्य ध्वनि (ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) के उच्चारण में मुखविवर में उच्चारणाङ्गों का स्पर्श होता है, परन्तु स्पर्शकाल में ही कोमल तालु नीचे झुक जाता है, जिसके कारण वायु उच्चारणावयवों के स्पर्शकाल में भी बाहर निकलती रहती है। इस प्रकार प्रथमतः

अननुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए किये गये स्पर्श के पश्चात् जब अनुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए प्रयत्न द्वारा अवरूद्ध वायु नासिका–विवर से निकलने लगती है। चूँकि अवरूद्ध वायु अननुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए मुखविवर में आई हुई थी तथा इसी वायु के स्फोटन हो जाने से अननुनासिक स्पर्श का पूर्ण उच्चारण भी संभव हो जाता है, अतः जब अनुनासिक स्पर्श के उच्चारण के लिए द्वितीय प्रयत्न की अवस्था में वायु को नासिका द्वारा स्फुट होने का अवसर प्राप्त हो जाता है, तब पूर्ववर्ती स्पर्श का पूर्ण उच्चारण तो हो जाता है, परन्तु वायु का स्फोटन नासिका द्वारा होने से पूर्ववर्ती अननुनासिक स्पर्श में नासिक्य गुण आ जाता है। यही नासिक्यता यम कही जाती है। उदाहरणार्थ – 'रूक्क्मम्' पद में द्वित्व हो जाने के पश्चात् द्वितीय ककार के उच्चारण के लिये जिह्वामूल से कोमलतालु प्रदेश पर स्पर्श करके वायु को मुखविवर से बाहर निकलने में अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है। पुनः वायु को स्फुट होने के पूर्व ही परवर्ती अनुनासिक ध्वनि 'मकार' के उच्चारण के लिए दोनों ओष्ठ परस्परिक स्पर्श की अवस्था का निर्माण कर लेते हैं। ओष्ठों के स्पर्श का प्रारंभ होते ही कोमलतालु कुछ नीचे झुक जाता है, जिससे वायु को नासिकाविवरमार्ग से बाहर निकलने का अवसर प्राप्त हो जाता है। परिणामतः ककार का स्फोटन हो जाता है। इस स्फोटन में वायु नासिकाविवर मार्ग से बाहर निकलती है। अतः ककार ध्वनि में अनुनासिकता आ जाती है। इस प्रकार 'रूक्क्मम्' का उच्चारण 'रूक्क्ंमम्' के रूप में हो जाता है।

संस्कृत भाषा में पश्चगामी समीकरण का प्राधान्य है। किसी भी व्यंजनसंयोग में परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को प्रभावित करके उसे अपने अनुरूप बना लेती है। इस तथ्य का संकेत च0 अ0 में प्राप्त होता है, जहाँ पर स्पष्टतः कहा गया है कि किसी भी व्यंजन संयोग में संयुक्त होने वाले प्रथम तत्त्व की परवर्ती आधी मात्रा द्वितीय तत्त्व के उच्चारण स्थान एवं करण से उच्चरित हो जाती है। उदाहरणार्थ – 'आत्मा' शब्द में तकार और मकार का संयोग है। यहाँ पर तकार की परवर्ती आधी मात्रा मकार के स्थान और करण से उच्चरित हो जाती है। जिसके कारण तकार का उच्चारण नासिक्यगुण से युक्त हो जाता है। इस प्रकार 'आत्मा' का उच्चारण 'आत्त्ंमा' के रूप में हो जाता है। यम के उच्चारण के संबंध में इसी प्रकार के ध्वनि वैज्ञानिक सिद्धांत कार्य करते हैं।

आधुनिक ध्वनि–वैज्ञानिक अननुनासिक स्पर्श के बाद अनुनासिक स्पर्श आने पर अननुनासिक स्पर्श को ही यम हो जाने की विचारधारा को पुष्ट मानने के पक्ष में हैं। परन्तु विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तव में यम की उच्चारण–प्रक्रिया में होता यह है कि अननुनासिक स्पर्श एवं अनुनासिक स्पर्श के मध्य पूर्ववर्ती स्पर्श के गुण वाली एक विशेष प्रकार की नासिक्य ध्वनि आ जाती है। 'रूक्क्मम्' में ककार के उच्चारण के लिए किये गये प्रयत्न द्वारा अवरूद्ध वायु जब नासिकाविवर द्वारा निकलती है, तब ककार के कण्ठस्थानीय वर्ण होने से तथा वायु के नासिकामार्ग द्वारा बाहर निकलने से ककार एवं मकार के मध्य एक अघोष 'ङकार' ध्वनि का अन्तर्निवेश हो जाता है। इसका कारण यह है कि 'ककार' ध्वनि अघोष है, अतः उसके स्वरूप वाली नासिक्य ध्वनि अघोष 'ङकार' ही होगी। इसी प्रकार 'पद्दमम्' में 'दकार' के स्वरूप वाली सघोष 'नकार' ध्वनि का अन्तर्निवेश हो जाता है। इसी ध्वनि को 'यम' कहना अधिक समीचीन है। ऋ0 प्रा0 में कहा गया है कि 'यम' अपने प्रकृतिभूत व्यंजन के सदृश होता है। इसका तात्पर्य है कि यम अपने मूलभूत व्यंजन के समान अघोषता अथवा सघोषता से युक्त होता है। 'ककार' अघोष ध्वनि है। अतः उसके बाद आने वाली 'यम' ध्वनि अघोष होगी। इसी प्रकार 'दकार' सघोष ध्वनि है। अतः उसके बाद आने वाली 'यम' ध्वनि सघोष होगी।

निष्कर्ष (Conclusion)

'यम' की अवधारणा संस्कृत की अपनी विशेषता है। परिस्थिति–विशेष में द्वित्व यम को जन्म देता है। विशेष परिस्थितियों में यम के अपवाद भी होते हैं।

संदर्भ (Reference)

1. ऋक् प्रातिशाख्य – 6। 29
2. ऋ0 प्रा0 – 6। 30
3. या0 शि0 – 95
4. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 21। 12
5. तै0 प्रा0 – 21। 12 पर त्रिभाष्यरत्न
6. तै0 प्रा0 – 21। 13
7. तै0 प्रा0 21। 13 पर वैदिकाभरण
8. वाजसनेयि प्रातिशाख्य – 4। 163
9. वा0 प्रा0 – 4। 163 पर उवट
10. वा0 प्रा0 – 4। 101
11. चतुरध्यायिका – 1। 99
12. ऋक्तंत्र – 1। 2
13. ऋ0 प्रा0 – 1। 25 पर उवट
14. वा0 प्रा0 – 1। 103 पर उवट
15. वा0 प्रा0 – 4। 163 पर उवट
16. वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा – 175
17. वर्ण0 प्र0 शिक्षा – 176
18. वा0 प्रा0 – 4। 164
19. वर्ण0 प्र0 शिक्षा – 177
20. ऋ0 प्रा0 – 6। 29
21. ऋ0 प्रा0 – 6। 33